RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-09
September-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i09.041

मौर्यकाल में श्रेणियों का आर्थिक कार्य

सुरेन्द्र प्रसाद

शोध छात्र, इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

भारतीय सामाजिक संरचनाओं में पेशेवर समुदायों का वर्ण या जाति में रूपान्तरित होने के उदाहरण बहुधा प्राप्त होते है। वास्तव में वृत्तिगत आधार वर्ण और जाति व्यवस्था का इतना सुस्पष्ट और प्रमुख अंग रहा है कि बहुत से विद्वानों ने यह अनुमान लगाया कि प्रारम्भ में जातियाँ पेशेवर श्रेणियाँ मात्र ही थी। इन विद्वानों ने केवल व्यवसाय अथवा पेशे को ही जाति–प्रथा के उद्भव का प्रधान कारण माना और यह मत दिया कि भारत में जाति–प्रथा की उत्पत्ति में व्यवसाय (पेशा) ही एकमात्र उत्तरदायी कारण रहा ह। व्यवसाय गत उच्चता और निम्नता के आधार पर ही समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसी जातियों की प्रस्थिति स्वीकार की गई तथा उनके विकास का मूल कारण माना गया।

विद्वानों के मतानुसार जाति–प्रथा की उत्पत्ति चार वर्ण से नहीं हुई बल्कि असंख्य पेशेवर समुदाय एवं रक्त सम्बन्ध के ऊपर आधारित समुदायों के परस्पर सम्मिलन से हुई थी।

पेशेवर जातियाँ जो अधिकतर वैश्य और शूद्र वर्ण में विद्यमान थी यथा– बढ़ई, नापित, बुनकर, लौहार, कुंभकार, तैलिक, धोबी इत्यादि। इनके अतिरिक्त भी भारतीय समाज में पेशेवर और वृत्तिमूलक कुछ संस्थायें थीं। पेशेवर संगठित जीवन के समुचित अध्ययन के लिए ऐसी संस्थाओं का स्वतंत्र परिप्रेक्ष्य में ही विवेचन करना अत्यन्त आवश्यक है। इन संस्थाओं में श्रेणी और निगम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त पूग, कुल, गण, संघ, व्रात, व्राज भी आर्थिक संस्थायें विद्यमान थीं। लेकिन सर्वप्रथम प्रमुखतः आर्थिक संस्थाओं (श्रेणी और निगम) के पारिभाषिक स्वरूप से परिचित होना आवश्यक है।

श्रेणी– वैश्य वर्ग में 3 वर्ग थे।

1. व्यापारी 2. कृषक 3. पशुपालक

उद्योगों व व्यापार में लगे व्यक्तियों अर्थात् व्यापारियों ने एक ही व्यवसाय करने वाले लोगों के अपने अलग–अलग संघ बनाये। इन संघों को ही श्रेणी कहा जाता था।

ये श्रेणी आधुनिक समुदाय के समान थीं। प्रत्येक श्रेणी का एक अध्यक्ष या सभापति होता था। जिसे प्रमुख 'ज्येष्ठक' या 'श्रेष्ठिन' कहते थे। 'महाश्रेष्ठिन' प्रमुख अध्यक्ष या प्रधान होता था। 'अनुश्रेष्ठिन' उपाध्यक्ष होता था। कभी–कभी विभिन्न श्रेणियाँ अपनी उन्नति हेतु एक ही अध्यक्ष या 'श्रेष्ठिन' के अन्तर्गत संगठित हो जाती थी। 'जेष्ठिन' का समाज या राजसभा में बड़ा सम्मानपूर्ण स्थान था। कभी–कभी श्रेणियों के अध्यक्ष राजसभासद दरबारी या मंत्री भी होते थे।

ये व्यवसायिक संघ या श्रेणियाँ अपने सदस्यों के पारस्परिक झगड़े का भी निर्णय करती थी। उनके सामान, क्रय–विक्रय में भी ये सहायता देती थी। शिल्पियों के संघ में प्रशिक्षण हेतु कुछ लोग रखे जाते थे जिन्हें 'अन्तेवासी' कहा जाता था। श्रेणी के नियम या विधान राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त थे। राज्य इनमें कोई हस्तक्षेप नहीं करता था। व्यापारियों को 'सेट्ठी' कहा जाता था। 'बौद्ध साहित्य' में व्यापार द्वारा अपार धन उत्पन्न करने वाले अनेक श्रेणियों व महाजनों का उल्लेख प्राप्त है। ये श्रेणियाँ सहकारी संस्था व आधुनिक बैंकों के कार्य भी करती थीं। ये अपने सदस्यों को ब्याज पर ऋण भी देती थी। इन श्रेणियों में धरोहर के रूप में धन भी जमा कराया जाता था जिस पर उन्हें ब्याज मिलता था। श्रेणियों के ब्याज की दर 1 प्रतिशत से 3/4 प्रतिशत तक होती ीी। इन श्रेणियों में धन के अलावा भूमि भी धरोहर के रूप में रखी जाती थी जिसकी आय ये श्रेणियाँ निर्दिष्ट धार्मिक कार्यों में व्यय करती थीं। सभी झगड़ों के निर्णय करने के लिए श्रेणियों के अपने–अपने न्यायालय थे।

'जातकों में 18 श्रेणी समूहों का उल्लेख मिलता है जिनमें राज, बढ़ई, लौहार, सुनार, चमार, चित्रकार, कुम्हार, जुलाहें, रंगरेज, तेली, कसाई, नाई, मछुआरे, माली, मल्लाह, डाकू–लुटेरे व महाजनों की श्रेणियाँ आदि थी। ये श्रेणियाँ अपना सामान बनाने के बाद उन्हें भण्डागारिक के समक्ष प्रस्तुत करती थीं। ऐसा 'विनयपिटक' से पता चलता है। 'कौटिल्य' के अर्थशास्त्र के अनुसार श्रमिको की श्रेणियों के कुछ विशेष नियम थे। जैसे उन्हें एक निश्चित अवधि में अपना अनुबंध पूरा करना होता था। इसके लिए उन्हें स्वीकृत समय के अतिरिक्त सात रातों की अवधि दी जाती थी। कुछ श्रेणियाँ अपने योद्धा भी रखती थी। आवश्यकता पड़ने पर राजा श्रेणी बल का भी प्रयोग करता था। 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र' हमें कुछ ऐसी श्रेणियों का उल्लेख देता है जो व्यापार युद्ध करके अपनी आजीविका चलाते थे। प्रारंभ में श्रेणी के सदस्य अपनी श्रेणी के भीतर ही विवाह सम्बन्ध कर लेते थे। इस प्रकार इन श्रेणियों में व्यवसायिक जातियों का उदय हुआ। धीरे–धीरे इन व्यवसायों का स्थानीयकरण प्रारम्भ हुआ और समान व्यवसाय का अनुकरण करने वाले व्यक्ति एक ही स्थान पर रहने लगे। 'जातक ग्रन्थ' में एक बढ़ई ग्राम का वर्णन है जिसमें बढ़ईयों

RRIJM 2015, All Rights Reserved

के एक हजार परिवार रहते थे। बड़े–बड़े नगरों में अलग–अलग व्यवसाय करने वाले लोगों की अलग–अलग गलियाँ थीं जिन्हें 'बीथि' कहा जाता था। 200 बी.सी. से 300 ई. के मध्य में इन श्रेणियों का बहुतायत मात्रा में उल्लेख प्राप्त है। जैसे– मथुरा से प्राप्त हुविष्क के राज्य काल में अनेक श्रेणियों का उल्लेख विद्यमान है। नहपान के राज्य काल के नासिक अभिलेख में जुलाहों की श्रेणी का वर्णन है। गुप्तकाल में रंघुवंश में वास्तुकारों की श्रेणी का वर्णन है। 'मुद्राराक्षस' में जौहरी की श्रेणी का वर्णन है। गुप्त अभिलेख तेली व रेशम बुनने वालों की श्रेणी का उल्लेख करते हैं। नगर के व्यापारियों की श्रेणी का अध्यक्ष नगर श्रेष्ठ कहलाता था। लगभग 15वीं शती तक में व्यापारिक श्रेणियाँ भारत में सुचारू रूप से कार्य करती रहीं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. शशिकान्त राय–प्राचीन भारत में व्यवसायिक समुदाय, नई दिल्ली–1986, पृ. 139–140।
2. 'जातक ग्रन्थ'–भाग–1, नं. 11, 12, पृ. 50, संपादक वी. फॉसबाल, 6 भाग, लंदन, 1877–97 : इ. बी. कावेल कैम्ब्रिज 1895–1913।
3. विनयपिटक–वोल्यूम 3, नं. 7, 8, 10 पृ. 22–23।
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र, भाग–4, पृ. 340, संपादक आर. शमशास्त्री, मैसूर–1929।
5. जातक ग्रन्थ–भाग–2, नं. 9, 10, पृ. 27, 28।

RRIJM 2015, All Rights Reserved